इतवार नहीं

हिन्दी ADDA

कुणाल सिंह

इतवार नहीं

https://www.hindiadda.com/itavaar-nahin/

दफ्तर के लिए सुबह आठ बजे घर से निकलो और लौटते लौटते भी रात के आठ बज ही जाते हैं। मतलब आठ घंटे की नौकरी बजाने के लिए इधर दो और उधर दो घंटे आने जाने में। लेकिन रोज रोज के इस चार घंटे का कोई हिसाब नहीं, गिनती नहीं। ये चार घंटे मेरे खुद के हिस्से से फालतू गए : मेरी जिंदगी के प्रोविडेंट फंड से रोज रोज खुदरा निकल कर खर्च हो जानेवाले, बिना मतलब, यों ही। मुझे सिर्फ आठ घंटे की तनख्वाह मिलनी है। मतलब मैं तब तक नौकरी में उपस्थित नहीं जब तक सुबह के दस बजे अटेंडेंस कार्ड पंच न कर दूँ और मेरी नौकरी वहीं खत्म हो जाती है जब शाम को छह बजे मैं दुबारे कार्ड पंच करके बाहर आ जाता हूँ। दस से छह के बीच नौकरी करने के लिए मैं आठ से आठ तक घर के दृश्य से गायब रहता हूँ। दस से छह के बीच अगर मुझे हार्ट अटैक हो जाय, मैं मर जाऊँ तो कंपेनशेसन ग्राउंड पर मेरी पत्नी को नौकरी लग सकती है। इसलिए मैं प्रार्थना करता हूँ कि मेरी मृत्यु इसी बीच हो, न कि आते या लौटते समय लोकल ट्रेन में या सड़क दुर्घटना में आदि। अगर रात आठ के बाद और सुबह आठ से पहले मैं दम तोड़ता हूँ तो यह मौत मेरे खुद के भरोसे होगी कि मैंने इतना कमा के रख दिया है कि मेरे बाद मेरी पत्नी को दूसरों का झाड़ू बरतन करने की नौबत न आए या कल्पना कीजिए मेरी एक बेटी हो तो उसकी पढ़ाई लिखाई बदस्तूर चलती रहे बस इतना।

मारे गुस्से के कभी कभी कल्पना करता हूँ कि सोमवार से लगा कर शनिवार तक, हफ्ते के छह दिन एक जैसे होते हैं। सुबह साढ़े छह का अलार्म बजना, निबटानादि के बाद नाश्ता, लंच बॉक्स, घर से जल्दी जल्दी निकलना,आठ बत्तीस की कल्याणी फास्ट : कहाँ तक गिनाऊँ! यह सब रोज रोज इतना एक सा है कि अलग से याद नहीं आता। नशे की हालत में रहता हूँ। दफ्तर से लौटते हुए खूब इच्छा हो कि कुछ खाना है खाना है लेकिन सुझाई ही नहीं पड़ता कि क्या। तभी लोकल की भीड़ चीरता हुआ बगल से एक मूँगफली वाला गुजरता है तो याद आता है कि मूँगफली ही तो खाने की इच्छा हो रही थी तब से। खरीद कर एक दाना मुँह में डालता हूँ तब अहसास होता है कि कितना गलत था। लेकिन तब तक देर हो चुकी होती है। चुपचाप एक एक दाना अनिच्छापूर्वक टूँगे जाता हूँ। यह भी याद नहीं आता कि अगर अच्छी न लगे तो मूँगफली फेंकी जा सकती है।

लेकिन जिंदगी मूँगफली का दाना नहीं। आदमी को हर हाल में जीने का ढब बनाए रखना चाहिए। लेकिन कभी कभी तो गुस्सा आ ही जाता है। किस पर, पता नहीं। लौटते समय कभी कभी मन करता है कि चलती ट्रेन से। ऐसा नहीं है कि इतना दुखी हूँ कि खुदकुशी जैसा कुछ। बस यों ही। पहले ऐसा नहीं सोचता था, लेकिन साल भर

पहले दफ्तर के कैशियर देवाशीष बाबू ने खुदकुशी कर ली, तब से, पता नहीं, लगता है कि एक रास्ता इधर को भी जाता है जैसा कुछ।

कल्याणी फास्ट कभी रास्ता नहीं बदलती। आठ बत्तीस में उसका कल्याणी और नौ पैतीस चालीस तक सियालदह में होना तय है। बीच के छोटे स्टेशनों, हाल्टों पर वह नहीं रुकती। उन हाल्टों के आधेक कि.मी. इधर उधर उसकी स्पीड कम हो जाय भले, लेकिन ऐन हाल्ट को वह इतनी रफ्तार से रौंदती हुई बढ़ जाती है कि क्या बताऊँ मन खुश हो जाता है। ऑफिस टाइम में उन छोटे स्टेशनों, हाल्टों पर भी भीड़ होती है लेकिन उसके लिए हर स्टेशन पर रुक रुक कर बढ़ने वाली तमाम लोकलें हैं। मसलन मैं एक सीनियर प्रूफरीडर हूँ, दफ्तर में और भी कई प्रूफरीडर हैं जिनका पे स्केल मुझसे कम है। मैं अक्सर गेट बार से लटकता हुआ उन स्टेशनों पर खड़े लोगों के भागते अक्स को देखता हूँ और मेरे मुँह से बेसाख्ता कुछ अफसोसिया शब्द निकल जाते हैं : ओह, बिचारे, ये छोटे स्टेशन वाले! ऐसे में हम कल्याणी फास्ट वाले खुद को ज्यादा रुतबे वाले, आम स्टेशन के लोगों से थोड़ा ऊपर का समझते हैं और खुश होते हैं। मसलन वही सीनियर प्रूफरीडर, ज्यादा पे स्केल आदि।

इतवार को दफ्तर की छुट्टी रहती है। इतवार को लेकर मेरी एक फैंटेसी है। मुझे लगता है, इतवार की देह एकमुश्त होती है, ऊपर से लगा कर नीचे तक एक इकट्ठी; जबकि हफ्ते के दूसरे दिन टुकड़ों में बँटे होते हैं और जब आप एक टुकड़े पर होते हैं, दूसरा टुकड़ा आँखों से ओझल रहता है। मसलन 'ऑफिस के लिए निकलने से पहले मैं नहा रहा हूँ' वाले टुकड़े पर खड़े हो कर देखो तो कल्याणी फास्ट के इंतजार में स्टेशन पर टहल रहा हूँ' वाला टुकड़ा दृश्य से कतई नहीं दिखता। हर टुकड़ा दूसरे से लगा बझा आपके आगे सरकता जाता है और आप बगैर एक जरा कुनमुनाए हर टुकड़े को स्वीकार (मूल पांडुलिपि में 'अंगीकार' जैसा प्राचीन शब्द था। इसे 'स्वीकार' कर दिया। संपादक जी कृपया ध्यान दें। सीनियर प्रूफरीडर, ज्यादा पे स्केल) करते जाते हैं। आप नहा चुकने के बाद जैसे ही खाली होते हैं कि एक अदृश्य हाथ आपको एक पर्ची थमा देता है जिस पर लिखा होता है, 'नाश्ता'। इसी तरह नाश्ते के बाद'जल्दी निकलो' वाली पर्ची। आठ बत्तीस पर कल्याणी फास्ट, पौने दस पर सीटीसी बस, दस बजे कार्ड पंच की तमाम पर्चियों से निबटते निबटते जब आप ऑफिस में अपनी कुर्सी पर बैठते हैं तो वही अदृश्य हाथ मेज पर एक साथ कई सारी फाइलें पटक जाता है। शाम तक निबटा दीजिएगा। कल ही प्रेस के लिए छोड़नी है इन्हें। वैसे तो दो रीडिंग हो चुकी है फिर भी मूल पांडुलिपियों से मिलान कर देखिएगा, कहीं सी-कॉपी न छूटी हो। जरा सावधानी

से,क्या है कि पिछली कॉपियों में कुछ भूलें चली गई थीं। और हाँ, फोलियो पर भी नजर मारते जाइएगा जरा। आदि।

लेकिन इतवार को ऐसा नहीं। अक्सर ऐसा होता है कि इतवार की सुबह बिस्तरे से निकलूँ और एकबारगी समझ में ही न आए कि आज दिन भर करना क्या है! मतलब इतवार की सुबह सुबह ही आप उस इतवार की शाम तक की देह को देख सकते हैं, एकमुश्त, एक साँस में। मैं अक्सर बिस्तरे में तब तक पड़ा रहता हूँ जब तक गौरी चाय ले कर न आ जाय। चाय पी कर मैं तरोताजा हो जाता। इतवार इतवार, जब मैं खाली होता हूँ प्यार से गौरी को देखता हूँ। इतवार इतवार, गौरी के बारे में सोच कर मन कैसा कैसा हो उठता है। मैं हर इतवार सोचता हूँ कि बेचारी गौरी के लिए सब दिन एक समान होते हैं। रोज वही काम। कोई छुट्टी नहीं। नो आराम। आदि। मैं हर इतवार सोचता हूँ कि कम से कम झाड़ू पोंछा बरतन बासन के लिए किसी को रख लूँ। गौरी को थोड़ी राहत हो जाएगी। लेकिन यह भी मेरी एक फैंटेसी है।

एक इतवार को अचानक किसी तेज आवाज से मेरी आँखें खुल गईं। देखा, गौरी का चेहरा ठीक मेरे चेहरे के ऊपर छाया हुआ। मेरी समझ में नहीं आया कि क्या हुआ। गौरी हँसी, उठी, चली, रुकी, मुड़ी, हँसी और मुझे पकड़ने के लिए अपना हाथ बढ़ाया। मैंने झपटना चाहा लेकिन वह माँगुर मछली की तरह फिसलते हुए भाग गई। मैंने घड़ी देखी, पौने पाँच। पागल हो गई है क्या! इतनी सुबह तो मैं हफ्ते के दूसरे दिनों भी नहीं जागता। मारे गुस्से के मेरे दिमाग के सारे तंतु झनझना रहे थे। नींद पूरी तरह गायब हो चुकी थी। दुबारे सोने की कोशिश बेकार थी। मैंने औरतों को दी जाने वाली दो लोकप्रिय गालियाँ गौरी को दीं और बिस्तरे से निकल आया। अभी चारों ओर अलाली ही थी। मुझे एकाएक यह ख्याल आया कि अँधेरे का फायदा उठा कर गौरी कहीं जा छुपी है। मैंने उसे ललकारा। हिम्मत है तो सामने आओ। कायर। भगोड़ी। दुश्मन। कहीं से उसकी हँसी सुनाई दी। हँसी पर अँधेरे का पर्दा था। सूर्योदय तक मैं उसे खोजता रहा। इधर से उधर। सूरज की पहली किरण में वह ऐन मेरे सामने दिखाई दी। अपने आपको मेरे हवाले कर दिया : लो, दो चार मुक्के मार लो। हिसाब खत्म करो। जाती हूँ। ढेर सारे काम निबटाने हैं। बाप रे।

अमोल प्रकाशन समूह के एक साहित्यिक पाक्षिक में मैं सीनियर प्रूफरीडर हूँ। सीनियर कंपोजीटर सुभाष दा के टाइप किए हुए मैटर सीधे मेरी डेस्क पर आते हैं। इतने वर्षों में सुभाष दा और मेरी ट्यूनिंग इतनी अच्छी हो गई है कि मैं धड़ल्ले से शब्द दर शब्द, पंक्ति दर पंक्ति फलाँगता जाता हूँ और ऐन वहीं जा कर मेरी कलम रुकती है जहाँ सुभाष दा से गलती की अपेक्षा होती और मजे की बात, सुभाष दा ने

कभी मुझे निराश नहीं किया। मसलन हमेशा उन्होंने 'आशीर्वाद' को 'आर्शीवाद' ही टाइप किया और 'संवेदना' को 'संवदेना'। कल्याणी फास्ट की स्पीड से गुजरो तो ये गलत टाइप हुए शब्द पहले से दिमाग के हार्डडिस्क में फीड सही शब्दों की झलक देकर फिसल जाते हैं। सुभाष दा हँसते हैं, खाँसते हैं। (करबी दी, 'ऐ सुभाष, क्यों इतना बीड़ी पीता है रे! मर जायगा, कह देती हूँ।') उनकी उँगलियाँ खटाखट 'की बोर्ड' पर फिसलती जाती हैं। किसी शब्द के लिए सही 'की' पर उँगली जाने जाने को होती है कि बीच में मेरी झलकी दिख जाती होगी और हँसते हुए खाँसते हुए वे जान बूझ कर उँगली का रुख बदल देते होंगे। इस तरह सही पर जा कर थम जाने वाले इस खेल को थोड़ा और जी लेने की मोहलत मिल जाती है। उसकी उम्र एक और प्रूफरीडिंग तक बढ़ जाती है। अक्सर मेरा और सुभाष दा का यह गुप्त खेल मैटर प्रेस में छोड़ने की डेडलाइन तक चलता रहता है। उस नीमअँधेरे में गौरी कई बार मेरे हाथ आते आते बची। अँधेरे का फायदा उठा कर मैं उसे अपने हाथों से फिसला देता रहा। अंत में सूर्योदय की डेडलाइन ने लुकाछिपी का यह खेल खत्म कर दिया। गौरी को ढेर सारे काम निबटाने थे। (ऊपर के पैरे की अंतिम पंक्तियाँ यहाँ शिफ्ट करें, सीनियर प्रूफरीडर।) वह रसोई में चली गई। मैं ओसारे में लगी चौकी पर बैठ गया।

बचपन से ही इतवार के दिन सुबह सुबह कोई खुशी की बात हो गई हो जैसे, ऐसा लगता आया है। रसोई में स्टोव बहुत शोर करता था। मैंने गौरी से पूछा, 'क्या बना रही हो!' जैसे ही मैंने पूछा, कुकर ने जोर से सीटी बजा दी। कुकर की सीटी में गौरी तक मेरा प्रश्न नहीं पहुँच पाया। वह बेखबर अपना काम करती रही। मुझे बुरा लगा कि उसने मुझे नहीं सुना। थोड़ी देर मैं चुपचाप बैठा रहा कि क्या पता वह अचानक कुछ बोल बैठे। मसलन क्या हुआ,चुप क्यों बैठे हो, गुस्सा हो क्या आदि। लेकिन वह अपना काम करती रही। उसे काम में बझा देख मैं गुस्सा गया। (दरअसल 'चुप क्यों बैठे हो गुस्सा हो क्या' वाला वाक्य जब जेहन में कौंधा, उसी के साथ 'गुस्सा' वाली फीलिंग भी आ गई और गुस्से में चुप हो कर बैठ जाना मुझे अच्छा लगा।) इसके बाद स्क्रिप्ट में होना यह था कि गौरी आ कर मुझे मनाए। 'चुप क्यों... गुस्सा हो क्या' के बाद 'मान जाओ न, प्लीज!' जैसा कोई वाक्य अपने टेक्स्ट को सुंदर और सरस बनाता है। लेकिन गौरी काम करती रही, काम करती रही।) खाली काम करती रहती है। बहुत बिजी बनती है। मैंने तेज आवाज में कहा, 'तुम अपने आपको बहुत लगाती हो न?' गौरी ने गरदन तिरछी कर मुझे देखा। गौरी मुस्कराई। गौरी ने मुझे आँख मारी। मेरा पारा गरम हो गया। मैंने कहा, 'कुटनी।' गौरी ने एक बार और आँख मारी। मैंने मुँह घुमा लिया।

दो कमरों का घर था। फिर बिना छत वाला लंबा ओसारा और दो सीढ़ी उतर कर खुला आँगन। आँगन में पीपल का एक पेड़ था। पुराना और विकराल। उसका तना मोटा और गाँठदार था। एक तरफ जरा सा झुका हुआ। उसका हाव भाव कुछ ऐसा था मानो वह बड़ी नजाकत के साथ झुक कर आदाब बजा रहा हो। पेड़ आँगन के बीचोंबीच था। पेड़ के चारों ओर गोलाई में कच्चे फर्श को छोड़ कर शेष आँगन में काले पत्थरों की ईंटें बिछी थीं। सुबह सुबह गौरी आँगन में बिखरे सूखे पत्तों को बुहार कर गोलाई की मिट्टी में डाल देती थी। आँगन पार कर नहानघर और पाखाना था। दोनों सटे सटे थे। दोनों के ऊपर खप्परों की एक ही छाजन थी। दोनों की दीवारें बिना पलस्तर की थीं। नहानघर के बाहर आँगन में थोड़ा बाएँ एक हैंडपंप गड़ा था। वहाँ कपड़ों को सुखाने के लिए लोहे का एक तार टँगा था। तार का एक सिरा पेड़ में ठुके कील से लगा था और दूसरा नहानघर के सामने से होता हुआ अहाते तक चला जाता था। हैंडपंप के पास से जल की समुचित निकासी के लिए एक मोरी अहाते में छेद करती हुई बिला जाती थी।

रसोईघर ओसारे में ही था : एक तरफ खप्परों की छाजन तले। शेष ओसारा ऊपर और सामने से खुला था। घर में डायनिंग टेबल नहीं था। खाना पीना आदि ओसारे में लगी चौकी पर ही हो जाता था जिस पर अभी बैठा बैठा मैं झपकियाँ लेने लगा था। अचानक कान में सुरसुरी हुई तो अकबका कर जगा। लगा कोई चींटी घुस पड़ रही है। इतने में पीछे से हँसने की आवाज आई। इस औरत ने मेरी नाक में दम कर रखा है। मैंने एक झटके में उसे पकड़ना चाहा। वह रसोई में भाग गई। मैं चौकी से उतर कर उसका पीछा करने में अलसा गया। मुझे फिर से नींद आ रही थी। गौरी ने मुझे नहाने के लिए कहा। मैं चुप रहा। गौरी ने एक बार और कहा कि जा कर नहा लूँ। मैंने मन ही मन फैसला किया कि उसके तीन बार कहने पर ही नहाने जाऊँगा। मेरे पास एक साबुत दिन था और बमुश्किल अभी आठ बजे थे। गर्मी की सुबह थी। लमछर और गजब की फुर्तीली। मक्खन निकाल लिए गए दूध की तरह छरहरी। ओसारे से उतरने वाली सीढ़ियों तक धूप आ चुकी थी। थोड़ी देर में पूरा ओसारा उसकी गिरफ्त में आ जाएगा।

मेरे नहाने की बात भूल कर गौरी चाय लिए आई। उसके चेहरे पर अब भी शरारतों की खुरचनें जमा थीं। वह मुस्करा रही थी। मैं उसे मुस्कराते हुए नहीं देखना चाहता था। मैंने मुँह फेर लिया। चौकी पर चाय का ग्लास रखते हुए वह मेरा खून जलाने के लिए वहीं बैठ गई। मैं अपने मुँह फेरने को ले कर अड़ा रहा। लगातार दूसरी तरफ देखता रहा। मुझे लगा, मेरी आँखों को जल्द ही अपने देखने के लिए किसी ठोस चीज की तलाश कर लेनी चाहिए। कुछ नहीं मिला तो मैंने कल्पना की कि एक बिल्ली है जिसे मुझे देखना है। मैं पूरी संजीदगी से गौरी पर जाहिर करना चाहता था कि मैं अहाते पर

दबे पाँव चल रही एक बिल्ली देख रहा हूँ। गौरी काल्पनिक बिल्ली वाली बात समझ गई। हद की यह एक बात हुई कि गौरी ने आँगन में उतर कर एक झूठमूठ का ढेला उठा बिल्ली को दे मारा। झूठमूठ की बिल्ली अहाते पर से झूठमूठ कूद कर गायब हो गई। अब मेरे देखने का कोई प्रत्यक्ष बहाना नहीं रह गया। गौरी चली गई। मैं इत्मीनान की साँस लेकर चाय पीने लगा।

चाय पीने के बाद भी मैं बैठा रहा। इस बीच गौरी किसी काम से बाहर आई तो मैंने सोचा मुझसे नहा लेने को कहेगी। लेकिन उसने कुछ नहीं कहा। वह मेरे नहाने की बात एकदम से भूल गई लगती थी, जबकि मैं सोचता था कि जल्द अज जल्द उसका तीन बार नहाने के लिए कहना पूरा हो और मैं नहा लूँ। दो बार वह पहले ही कह चुकी थी, मैं चाहता था कि वह मेरे सामने आ कर या चाहे तो पीछे से छुप कर एक बार और कह दे। मसलन दो रीडिंग हो गई हो और फाइनल रीडिंग बाकी है तो मैटर प्रेस के लिए कैसे रिलीज किया जाय, देरी हो रही है,डेडलाइन, ओह आदि। मुझे शक है कि वह भाँप चुकी है, मैं इस तरह की कोई प्रतिज्ञा किए बैठा हूँ, इसलिए वह मुझे छका रही है।

धूप अब लंबे कदमों से ओसारे की सीढ़ियाँ फलाँग रही थी। उसकी आँच से ठंडा ओसारा भरता जा रहा था। गौरी रसोई के काम निबटाने को होगी। थोड़ी देर में कड़ाही कुकर तसली आदि बरतनों को धोने के लिए हैंडपंप पर रख आएगी। उनमें पानी डाल देगी ताकि धूप में बरतन कड़े न हो जाएँ। मुझे पसीना आ रहा था। मैंने बनियान निकाल दी थी। दीवार से टेक लगा ली थी। बार बार उबासी ले रहा था। बार बार उबासी लेने की वजह से मेरी आँखों में पानी भर आया था। पानी के गर्म झिलमिल में सामने का खुला आँगन धूप में चमचमा रहा था।

सहसा मुझे लगा कि दुनिया में मैं एक बेकार आदमी हूँ। (सुभाष दा की उँगलियाँ की बोर्ड पर खटाखट फिसलीं : 'मैं एक बेकार आदमी हूँ।' ... सब अपना अपना काम कर रहे हैं और मैं फालतू बैठा हूँ। इतना सोचते ही मैंने नींद की बची खुची खुमारी से एक झटके में खुद को बरी किया। एक महान जाग से फट पड़ने की हद तक मैं भर गया। उबल गया। फौरन चौकी से उतर कर खड़ा हो गया। तन गया। रसोई की तरफ देखते हुए चिल्ला कर कहा, 'तुम तीन बार कहो या न कहो मुझे परवा नहीं। मेरे मन में जो नहाने की बात एक बार घर कर गई तो समझो कर गई!'

गौरी तुरंत आँचल से हाथ पोंछती हुई रसोई से बाहर निकल आई। आ कर मेरे सामने खड़ी हो गई। वह मुस्कराते हुए आई थी, मुस्कराते हुए खड़ी रही। इस बार मैं बजिद उसे मुस्कराता हुआ देखता रहा। गहरे अड़ियलपने से मेरा चेहरा तमतमा रहा था,

आँखें छोटी हो आई थीं, दृष्टि जल रही थी। मेरे इस तरह देखने से वह लजा गई। (उसके लजाने का एकमात्र कारण दिन के चौचक उजाले में 'पति' द्वारा घूर घूर कर देखा जाना ही था, देखने के पीछे के दृढ़ संकल्प की उसे कोई भनक भी न थी, हद है!) वह वहाँ से हट गई। मेरे लिए अंगोछा और साबुन की बट्टी लेती आई। किसी विजेता की तरह पैरों को बहुत गहरे अकड़ाते ओसारे से उतर कर मैं आँगन में आ गया। नहानघर तक आया। नहानघर का दरवाजा खोला और अंदर हो लिया। अंदर ठंडा अँधेरा था। सुबह से नहानघर का उपयोग नहीं हुआ था। चहबच्चे का पानी स्थिर था। फर्श एकदम सूखा। मुझे याद आया अगर मैं नहाऊँगा तो फर्श गीला हो जाएगा। मैं चुक्केमुक्के बैठ गया। उँगली से फर्श को छुआ। उँगली ने सूखे फर्श पर पसीने की एक छोटी सी दुबली रेखा खींच दी। फर्श के रोएँ खड़े हो गए। फर्श की आँखें मुँदने लगीं। पसीने की रेखा के इर्दगिर्द फर्श की कुँवारी देह से खून की बिंदियाँ रिसने लगीं। फर्श को सँभल जाने की मोहलत देते हुए मैं उठ कर बाहर चला आया। पीछे मुड़ कर देखा, फर्श ने कृतज्ञता में आँखें झुका ली थीं। मुझसे बुदबुदा कर कहा, थैंक यू!

धूप में आँगन तपता था। मैं नंगे पाँव था। ज्यादा देर खड़े रहना मुश्किल। अंगोछे को तार पर टाँग दिया। हैंडपंप चला कर पानी भरने लगा। आधी बाल्टी भर कर यों ही पैरों पर गिरा लिया। पैरों को हैंडपंप के शुरुआती पानी की गुनगुनी ठंडक भली लगी। बाल्टी दुबारा भर कर वहीं बैठ नहाने लगा। इस बीच गौरी बरतन रखने आई। बरतन रख कर बाल्टी से पानी छलका कर हाथ धोने लगी। वह मुस्करा रही थी। मैंने सिर पीट लिया कि इसका क्या करूँ। वह साबुन ले कर ऐन मेरे पीछे बैठ गई। मेरी पीठ में साबुन लगाने लगी। मैंने एक लोटा पानी अपने सिर पर इस ढंग से फेंका कि गौरी भीग जाए। तिस पर भी वह गुस्साने की बजाय हँसने लगी। मैंने चीख कर कहा, 'भागो यहाँ से।' वह गिलहरी की तरह छिटक गई। जाते हुए पेड़ के पास रुकी। मैंने देखा कि अब क्या है! वह जीभ बिरा रही थी। मुझे रोना आ रहा था।

नहाते नहाते मेरी जेहन में एक वाक्य कौंधा कि अब नहीं नहाना चाहिए। (खटाखट : 'अब नहीं नहाना चाहिए।') देह पोंछने के लिए मैंने तार से अंगोछा खींचा। तार झनझना उठा। उस पर बैठी एक गौरैया उड़ गई। अंगोछा धूप में गरम और जरा कड़ा हो गया था। मैंने उसे पानी से लबालब भरी अपनी देह से सटाया तो वह जरा सिकुड़ गया, जैसे शरमा रहा हो : अयहय! कपड़े अलग करने के बाद मैंने अंगोछे को लपेट लिया। साबुन की बट्टी ले कर मैं ओसारे की तरफ आने लगा। धूप में तपे आँगन के फर्श पर मेरे पीछे पानी के पाँव बनने लगे। ओसारे में आ कर मैं मुड़ा। पानी के पाँवों को देखा। दूर के पाँव गायब हो गए थे। ओसारे में भी चौकी तक धूप आ गई थी। मैं कमरे

में आ गया। कमरा ठंडा और बाहर की अपेक्षा अँधेरा था। गौरी खिड़की पर खड़ी थी। मुझे देखते ही जल्दी से बनियान और लुंगी लेती आई।

नहा लेने से मैं तरोताजा महसूस कर रहा था। ठीक से नहीं पोंछे जाने से देह थोड़ी सी गीली थी मानो अभी फर्स्ट रीडिंग ही हुई हो। पहनी हुई बनियान पर जगह जगह पानी के धब्बे थे। गौरी अंगोछा और साबुन की बट्टी लेकर नहाने चली गई। मैं कमरे में अकेला छूट गया। **(Note :** यहाँ एक पैरा कंपोज होने से रह गया है। वैसे कहानी की मूल थीम से यह हट कर है तो संपादक जी से सलाह कर और लेखक से अनुमति ले कर इसे **edit**किया जा सकता है। पैरा **:** मुझे पता था कि मेरे नहाने के बाद गौरी भी साबुन की बट्टी ले कर नहाने जाएगी, फिर भी नहा कर आते समय साबुन की बट्टी अपने साथ कमरे में लेते आना मेरी आदत में शुमार था। मेरे नहा कर आने और गौरी के नहाने जाने के बीच के चार पाँच मिनट के अंतराल में साबुन का पति पत्नी में से किसी के भी संरक्षण में न होना साबुन की फिजूलखर्ची है।**)**

यह इत्तेफाक की बात थी कि गौरी जब नहा कर आई तो मैं भी खिड़की पर खड़ा था। खिड़की के सामने एक मैदान था। मैदान और खिड़की के बीच की जमीन थोड़ी ढलुई थी। ढलुई जमीन घर की छाया में ठंडी थी। इस पालतू जमीन में नाना वनस्पतियाँ उग आई थीं। फिर जमीन घुटना भर ऊँचा उठ गई थी और उसके बाद वह मैदान : पीला और खुला। खुले मैदान पर धूप का करिश्मा था। आदमी की नजरें धोखा खा जाती थीं। मेरी आँखें दूर दृश्य के सुलझेपन में गुम थीं। धूप का आकाश, मैदान, पेड़, मरीचिका, उदासी, चुप्पी और हवा। और इतवार की दोपहर। मैं कुछ भी अलग अलग नहीं देख रहा था। मैं सब कुछ एक साथ देख रहा था। कि तभी गौरी आई।

मैंने पूछा, नहा लिया! हालाँकि यह साक्षात दिख रहा था। वह न जाने क्या था जिसने मुझसे यह कहलवा लिया था। गौरी ने मुझे खिड़की पर खड़ा देख लिया था। ऐन थोड़ी देर पहले वह जो देख रही थी, उसे देखते हुए। उसके देखे की जासूसी करते हुए। उसके रहस्य को उससे छुप कर खोलने की कोशिश करते हुए। धूप में कुछ भी नहीं छुपता। वह हमारी सारी गहराइयाँ उतार फेंकती है, जिन्हें पानी के आवरण में हम छुपाने की कोशिश करते हैं। गौरी हँसी। मैं सिटपिटा गया। मैं उसे छूना चाहता था। अपने स्पर्श का भुलावा देना चाहता था। वह छिटक कर निकल गई। मैं बिस्तरे पर निढाल पड़ गया।

मुझे बार बार लग रहा था कि मैं गौरी की निगाह में गिर गया हूँ। मैं बहुत ओछा किस्म का इनसान हूँ। मुझे याद आया, शादी के कुछ ही दिनों बाद किसी छोटी सी बात पर

नाराज हो कर मैंने गौरी को एक चाँटा मार दिया था। **(e.g.** चाँटा रसीद कर दिया था।**)** इसके अलावा भी बहुत-सी बातें। इस वक्त यह सारी बातें मेरे दिमाग में नाचने लगीं। मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि मैं एक नालायक पति हूँ। मसलन मैंने शादी के बाद से गौरी को अपनी कमाई से एक अदद साड़ी तक ला कर नहीं दी। माना कि इस घर में मैं इकलौता कमाऊ आदमी हूँ और जो कुछ भी होता है मेरी ही कमाई से, फिर भी एक पत्नी को इस बात की बड़ी चाह होती है कि उसका पति उसे शादी की वर्षगाँठ पर एक साड़ी ला कर दे। तिस पर भी गौरी ने कभी तिरछी निगाह से नहीं देखा। वह दुख में सुख में सदैव हँसती रहती है। आदि। निश्चित तौर पर मैं एक नालायक पति हूँ। नालायक नालायक। मैं बार बार इस शब्द को दुहराता रहा। मेरे दिमाग में इस शब्द की बनावट और लिखावट साफ साफ अंकित हो गई। **(**सुभाष दा की उँगलियाँ, खटाखट **:** ना-ला-य-क।**)** बार बार दुहराते रहने से थोड़ी देर में 'नालायक' मुझे एक मसखरा शब्द प्रतीत होने लगा। मुझे हँसी आने लगी। **(**सुभाष दा खाँसने लगे।**)**

फिर मैंने नए सिरे से कोशिश की, कि इस शब्द को परे ठेल कर गौरी के प्रति अपनी तमाम क्रूरताओं का विश्लेषण करूँ। हाँ तो उदाहरण के लिए आज सुबह झकझोर कर उसने मुझे जगा दिया... नालायक... महत्वपूर्ण यह नहीं है कि उसने जगा दिया... नालायक... महत्वपूर्ण यह है कि वह हँस रही थी... नालायक... गौर कीजिए यह कोई ऐसी वैसी बात नहीं... जैसा कि रिवाज है वह अपना घर बार... आत्मीय स्वजन... बंधु-बांधव सबको छोड़ कर यहाँ रहने आई... नालायक... किसके भरोसे?... मैं पूछता हूँ किसके भरोसे?... तो गौर करना चाहिए... नालायक... उंह,गौर करना चाहिए कि... अच्छा आप ही बताएँ कि क्या एक पत्नी अपने पति के साथ एक अदना सा मजाक भी नहीं कर सकती?... नालायक... इसमें गुस्साने की... उस पर चीखने चिल्लाने की क्या बात है?... मैं पूछता हूँ क्या बात है?... नालायक...।

'नालायक' शब्द से मेरा पीछा नहीं छूट रहा था। इस पिद्दी शब्द पर आ कर मैं हैंग हो गया था। ठीक से विचार विमर्श नहीं कर पा रहा था। मैंने जोर से अपना सिर झटक लिया। एक झटके के साथ अचानक कल्याणी फास्ट रुक जाती है तो भीड़ से 'क्या हुआ क्या हुआ' का शोर उठने लगता है। मैं ही नहीं, गेट पर लटके पाँचों लोग झाँक कर देखते हैं : रेड सिग्नल।

'क्या हुआ**?**' मेरे पीछे खड़े मधुकर दा पूछते हैं।

'सिस्टम हैंग कर गया लगता है।' मैं हँसता हूँ। मधुकर दा नहीं हँसते।

इतने में रेड सिग्नल होने के बावजूद प्लेटफॉर्म सिग्नल मिल जाता है और कल्याणी फास्ट सामने आधे कि.मी. की दूरी पर नजर आते हाल्ट तक के लिए रेंगने लगती है। प्लेटफॉर्म सिग्नल तभी मिलता है जब लाइन में कोई गड़बड़ी हो और कम से कम आधे घंटे तक उसके ठीकठाक होने की कोई उम्मीद नहीं। मधुकर दा नाटे कद के होने के कारण प्लेटफॉर्म सिग्नल नहीं देख सके। गाड़ी को रेंगते देख पूछे, 'क्या हुआ?'

'प्लेटफॉर्म सिग्नल। मतलब एकाएक लोडशेडिंग हो जाय तो दस पाँच मिनटों के लिए जैसे कंप्यूटर यूपीएस पर चलता है न!... या फिर समझिए सिस्टम सेफ मोड में चल रहा है।' मैं फिर से हँसता हूँ। मधुकर दा फिर से नहीं हँसते। कल्याणी में ही रहते हैं, चाँदनी चौक में एक दैनिक में काम करते हैं। उनकी नौकरी अलग अलग शिफ्टों में होती है। जब दस बजे वाली शिफ्ट हो, हम साथ ही जाते हैं। हाल ही में उनके यहाँ इतवार की छुट्टी खत्म कर दी गई थी। तब से मधुकर दा नहीं हँसते। हफ्ते में सातों दिन काम पर जाते हैं। बिना हँसे।

'कुछ पता चला?' मधुकर दा पूछते हैं।

'पता नहीं, शायद लाइन क्लियर नहीं इसलिए।' मैं कहता हूँ।

'नहीं नहीं, मैं तुम्हारे दफ्तर की बात कर रहा हूँ। सुनो, अखबार में काम करता हूँ इसलिए पता है। खबर पक्की है। आज नहीं तो कल तुम्हारे यहाँ भी। देख लेना।' मेरे ठीक पीछे खड़े मधुकर दा अपनी गरदन उचका कर मेरे कान में लगभग फुसफुसाते हुए कहते हैं। गाड़ी अब तक प्लेटफॉर्म पर पहुँच चुकी है। कुछ लोग उतर कर खड़े हो जाते हैं। थोड़ी जगह मिल जाती है तो हम भीतर हो लेते हैं। एल.आई.सी. में काम करने वाले एक इटैलिक आदमी (दरअसल उसके हाथ पाँव की हड्डियाँ कुपोषण से टेढ़ी पड़ गई थीं, इस वजह से आपसी बातचीत में हम उसे 'इटैलिक' कहते) ने बैग से अपना लंच बॉक्स निकाला और उस पर उँगलियों में पहने 'गुस्सा कंट्रोल छल्ले' से तबला जैसा बजाने लगा। थोड़ी देर बाद उसके पीछे खड़े नाटे कद के एक आदमी ने बायाँ हाथ दाईं काँख में दबा दबा कर एक अजीबोगरीब आवाज निकालनी शुरू कर दी। खिड़की के पास बोल्ड आदमी (गहरे वर्ण का होने की वजह से बोल्ड) को और कुछ नहीं सूझा तो ट्रेन की इस्पाती दीवार ही पीट पीट कर ताल मिलाने लगा। धीरे धीरे पूरे डब्बे में बात फैल गई। सभी एक सुरताल में नाचने गाने लगे। कोई चुटकी बजा रहा है, कोई ताली, कोई सीटी। कोई फुटबोर्ड पर पैर पटक रहा है तो कोई ऊपर लगे हैंगरों को एक दूसरे से टकरा रहा है। सुन भाई, सुन बंदे! लगवा दिया लगवा दिया, कल्याणी फास्ट ने आज लेटकमिंग लगवा दिया। ऐ मुच्छड़ मेरे दोस्त, ऐ साथी मेरे गंजे : संडे

हो या मंडे, रोज खाओ अंडे। खुद से लेट होने की हिम्मत नहीं पड़ती, टाइम पे पहुँच जाते हैं गरमी हो या सर्दी। आज यह सपना भी पूरा हुआ। ऐ साफ सुथरे भाई, ऐ भाई मेरे गंदे : संडे हो मंडे...।

मेरा घर कल्याणी में है और दफ्तर कोलकाता में। आस पड़ोस के जितने भी नौकरीपेशा लोग, सबका दफ्तर कोलकाता में। कोई पूछता है कि कहाँ जा रहे हो तो दफ्तर वाली बात के विस्तार में न जाकर कहता हूँ, कोलकाता जा रहा हूँ। पूछने वाला कोलकाता मतलब दफ्तर समझ जाता है। प्रेस कॉपी में दफ्तर की जगह कोलकाता शब्द रखने के प्रचलन के पीछे एक समझदारी यह भी कि मैं किसी का नौकर नहीं हूँ। कोलकाता एक महानगर है। दस तरह के कामकाज हैं। घूमता फिरता रहता हूँ। नौकरी नहीं करता जी! 'बिजनेस' करता हूँ। किसी का मुखापेक्षी नहीं हूँ। इज्जत की रोटी खाता हूँ। आदि। लेकिन इसमें यह भी एक खतरा कि दफ्तर से एक सीएल ले कर वाकई कभी तफरीह के लिए या किसी रिश्तेदार से मिलने कोलकाता जाऊँ तो दफ्तर जाता समझ लिया जाता हूँ। बिना पूछे लोगों को बताता फिरता हूँ कि आज तो अमुक भाई साब से मिलने जा रहा हूँ या सुना है अमुक जगह बहुत सुंदर है, घूमने जाता हूँ। तिस पर भी कोई न कोई जिद्दी ऐसा कि टोक ही देता है, दफ्तर जा रहे हो! 'बिल्ली ने रस्ता काट दिया' जैसे एक मुहावरेदार वाक्य पर सुभाष दा अपना सिर धुनते हैं। (करबी दी, 'क्या हुआ सुभाष, आर यू ऑलराइट?') प्रूफ देखते हुए एक शब्दकोश से उकता कर दूसरे शब्दकोश की तरफ जाता हूँ। उदाहरण के लिए दफ्तर न जा कर कहीं घूमने फिरने जाना। यदि मंगलवार को दफ्तर न जा कर कहीं घूमने फिरने जाऊँ तो कोई टोके या न टोके, खुद ही लगने लगता है कि दफ्तर जा रहा हूँ। मैं जिद नहीं करता। अपने को समझाता हूँ कि फाइनल प्रूफ में मंगलवार की जगह इतवार जैसा शब्द रख देने मात्रा से आज भर दफ्तर की छुट्टी निकल आती है और मुझे दफ्तर नहीं, कहीं घूमने फिरने जाना है। घूमने फिरने के लिए इतवार होना चाहिए। इतवार को कल्याणी फास्ट में जिसे पाऊँ वह घूमने फिरने जाता हो। इतवार को कल्याणी फास्ट में मधुकर दा को कभी न पाऊँ।

कभी दफ्तर नहीं जा पाता तो वहाँ मेरी कुर्सी खाली रहती है। इस रोज रोज दफ्तर जाने के चक्कर में जिन जगहों पर कभी नहीं जा पाऊँगा, वहाँ हमेशा मेरी अनुपस्थिति मेरा इंतजार करेगी। दफ्तर में दस बजे तक मेरा पहुँचना एक नियत बात है। दस बजे के पहले मेरे लिए कोई फोन आए तो घंटी बजती रहती है कोई उठाता नहीं। कभी कभी मैं खुद ही फोन करके देख लेता हूँ कि मेरी अनुपस्थिति कैसे बजती है। किसी एक दिन दफ्तर नहीं जा कर दूसरे दिन दफ्तर पहुँचूँ तो सारे कुलीग चिंतित हो कर पूछते हैं कि

क्या हुआ था, बुखार तो नहीं अथवा पत्नी की तबीयत, सब खैरियत तो है आदि। किसी को यकीन नहीं होगा अगर कहा जाए घूमने फिरने गया था, चाहे यकीन हो भी तो हद से हद दीघा डायमंड हार्बर तक सोच सकते हैं। कहा जाए कि मसूरी गया था या कल्पना कीजिए ऊटी तो सब हँसने लगेंगे कि भई वाह, तुम्हारे सेंस ऑव ह्यूमर का क्या कहना! (मॉरीशस या स्विटजरलैंड तो मेरे ही विंडोज एक्स्पी के मेमोरी रैम में फीड नहीं होता। सॉरी, मोर दैन 512 मेगाबाइट, फाइल कैन नॉट बी सेव्ड, ट्राई अनदर डिस्क!) मेरी नौकरी एक ऐसा खूँटा है जिससे बँध कर मैं सपत्नीक मिलेनियम पार्क, नंदन या प्रिन्सेप घाट तक घूम फिर कर लौट आता हूँ। कभी बिना बताए दो तीन दिन तक गायब रह जाऊँ तो समझिए राम नाम सत्त है!

यह मैं पहले ही कह चुका हूँ कि दफ्तर जाना ऐसा कतई नहीं कि घर का दरवाजा खोला और दफ्तर के अंदर आ गए। घर के दरवाजे से निकल कर दफ्तर के दरवाजे तक पहुँचने के लिए दुनिया में न जाने कितने दरवाजे खोलने बंद करने होते हैं। इस वजह से घर से निकल कर दफ्तर को मेरा जाना, देर तक दिखने वाला जाना बना रहता है। दफ्तर जाते हुए दुनिया के खुले खतरनाक में मैं इतनी देर तक इतना स्पष्ट और स्थिर दिखता हूँ कि कोई नवसिखुआ भी आसानी से मुझ पर निशाना साध सकता है। ऐसे में कई कई दिन तक मेरी लाश मुर्दाघर में लावारिस पड़ी रहेगी। घर और दफ्तर के बीच मेरी 'बॉडी' पर किसी का दावा नहीं बनता। वहाँ मेरा कोई बॉस नहीं,कोई पत्नी नहीं, होने वाली उस बिटिया से भी कोई रिश्ता नहीं जिसका नाम मैंने अभी से सोच रखा है। वहाँ मैं अपनी जमानत पर खुद हूँ।

शाम को नियत समय पर दफ्तर के दरवाजे को खोल कर घर के लिए चलता हूँ। सड़क का दरवाजा खोल कर सड़क पर चलने लगता हूँ। सड़कों के दोनों तरफ महँगी दुकानों के दरवाजे हैं : शीशे के इतने पारदर्शी कि मुझ जैसे आदमी के लिए भी खुले होने का भ्रम रचते हैं। मैं जानता हूँ कि इन दरवाजों की चाबी मेरी जेब में नही आ पाती। खुल जा सिम सिम जैसा कोई मंत्र काम नहीं करता। (सॉरी, पासवर्ड इज नॉट करेक्ट, प्लीज ट्राई अगेन।) मैं परवा नहीं करता, लेकिन मन को एक चोट पहुँचती है। इस तरह रोज रोज अपमानित होता हूँ। **(e.g.** अपमान का कड़वा घूँट पीता हूँ।**)** बस के दरवाजे बस में चढ़ता हूँ। ट्रेन का दरवाजा खोल कर उतरते हुए प्लेटफॉर्म के दरवाजे से टकराते टकराते बचता हूँ। घर पहुँच कर घर का दरवाजा खटखटाता हूँ। गौरी घर का दरवाजा खोल कर सारे घर को मुझसे भर लेती है। घर में घर भर मैं। कल्पना करना बड़ा मुश्किल कि जब मैं घर में नहीं होता तो घर कैसा दिखता होगा। घर में गौरी इतनी दबी छुपी रहती है कि आसानी से पकड़ में नहीं आती। मेरे लिए चाय बनाती है

तो खुद भी थोड़ा सा ले लेती है। मैं बैंगन पसंद नहीं करता तो वह खुद के लिए भी बैंगन नहीं बनाती। मुझे पता नहीं चलता उसे अलग से क्या पसंद है। वह सब्जी लाने के लिए मुझे झोला पकड़ा देती है कि अपनी पसंद का जो भी लाओगे राँध दूँगी। मैं घर का दरवाजा खोल कर बाजार जाता हूँ। बाजार जाना इतना सुविधाजनक है कि जितनी बार बाजार जाऊँ बाजार जाना बचा ही रहता है। रात का खाना खाने के बाद बिस्तर का दरवाजा खोल कर पड़ रहता हूँ। गौरी फुटकर काम निबटा कर आदतवश एक बार सदर दरवाजा देख आती है कि ठीक से बंद है या नहीं। उसके लेटने आने तक मैं किताब का दरवाजा खोल कर कहानियाँ पढ़ता रहता हूँ। ठीक समय पर नींद का दरवाजा खोल कर सो जाता हूँ। सपने का दरवाजा खोल कर गौरी को चूमता हूँ। उसके अश्लील पेट और नाभि प्रदेश के बारे में सोचते सोचते एक कीड़ा बन जाता हूँ। उसकी देह का दरवाजा खोल कर धीरे धीरे भीतर का चमकीला अँधेरा कुतरता हूँ।

बिस्तर पर चित्त लेट कर मैं छत को एकटक देख रहा था। एकाएक मुझे लगा मेरी निगाहें अपेक्षाकृत धुँधली हैं और मैं छत को ठीक से पकड़ नहीं पा रहा हूँ। **(**यह दरअसल सोच से बाहर के समय का मंथर प्रवाह था। ईर्ष्या की तरह टिमटिमाती सोच से बाहर की रोशनी, जिसमें छत थी, गौरी थी, कमरे से बाहर धूप लहकती थी **:** इतवार की अलसाई दोपहर।**)** मुझे लगा मैं छत के मूल को नहीं पकड़ पा रहा। कभी कभी प्रूफ पढ़ते हुए अचानक मेरा मन टेक्स्ट से उखड़ जाता है। तब सिर्फ शब्दों की बनावट, बनावट की गलतियाँ भर पकड़ में आती हैं। **(**दरअसल प्रूफरीडिंग में इतने से ही काम चल जाता है, जरूरत पड़ने पर मैं अड़ सकता हूँ कि लिंग्विस्टिक सरफेस से आगे का काम एडिटिंग सेक्शन को रेफर किया जाए।**)** इस तरह पूरी कहानी पढ़ जाता हूँ लेकिन उसका कथानक पल्ले नहीं पड़ता। छत को एकटक देखते हुए मैंने अपनी समस्त शक्ति छत के सारांश को पकड़ने में लगा दी।

'खाना लगा दूँ?' गौरी ने पूछा। मैंने गौरी को देखा। कहीं ऐसा तो नहीं कि इतने सालों साथ साथ रहने के बावजूद मुझे नहीं पता गौरी नामक टेक्स्ट का कथानक क्या है! मैंने जोर से सिर झटका। नहीं, मैंने गौरी को अच्छी तरह पढ़ा है, उसके सारे रहस्यों से वाकिफ। मसलन वह सपने में किसे चूमा करती है या खिड़की से बाहर चुपचाप किसे देखा करती है आदि। जानने के इकहरे दर्प से मैं भर गया। हम एक खास किस्म की जिंदगी अपने लिए चुन लेते हैं, हालाँकि जो हमारी जिंदगियाँ नहीं हैं उन्हें थोड़ा बहुत जानते जरूर हैं। हम थोड़ा बहुत जानते हैं कि एक नेता या अभिनेता की जिंदगी कैसी होती है। **(**यह जानना हमें समय समय पर अपनी जिंदगी से संतुष्ट करता चलता है,मसलन मधुकर दा की जिंदगी के बरक्स मेरी खुद की जिंदगी।**)** कुछ इसी तरह का

आधा अधूरा जानना मुझे तुष्ट कर गया कि गौरी की जिंदगी कैसी है। फिर भी एक संशय हमेशा बना रहता है कि प्रेस को सौंपी गई ट्रेसिंग कॉपी में भी कहीं कोई भूल न चली गई हो। हम अपने मन को समझाते हैं कि इसका कोई अंत नहीं, कि जितनी बार प्रूफ देखा जाए कुछ न कुछ निकल ही आता है। मसलन हम दावे के साथ अंत तक नहीं कह सकते कि जहाँ अल्पविराम लगा है वहाँ पूर्णविराम हरगिज नहीं हो सकता था आदि।

खाना खा कर मैं बिस्तर पर लेट गया। कमरे से बाहर चकाचक धूप थी। गौरी ने आ कर खिड़की दरवाजा उठगां दिया। कमरे में झिरी अँधेरा हो गया। गौरी मेरे पास ही लेट गई। मैं उसकी तरफ करवट ले कर उसे देखने लगा। वह चित्त सोई थी। उसकी आँखें बंद थीं। आँखें बंद किए किए वह मुस्कराने लगी। वह न जाने कैसे जान गई थी कि मैं उसे देख रहा हूँ। मैंने उसे कमर के पास गुदगुदा दिया। उसने मेरी तरफ करवट ले ली। उसके चेहरे पर पसीने की हल्की चिकनाई थी। ललाट पर, पलकों की पीठ की गझिन झुर्रियों में, नाक के नीचे ऊपरी होंठ के ऐन ऊपर टाई की शक्ल वाली गड़ही में, ठुड्डी के कटाव में पसीने की झिलमिल थी। साँस लेने की वजह से बाईं छाती के ऊपर का तिल पसीने से जलता बुझता था। काँख के पास ब्लाउज गीला था।

थोड़ी देर बाद मेरी आँखों में नींद के खुरदरे लाल रेशे तैरने लगे। दृश्य खिंचा खिंचा लगने लगा। मैंने आँखें बंद कर लीं। बंद आँखों का रंग ललौंसा उजास लिए हुए था। इस रंग को मैं बचपन से देखता आया हूँ। धूप में खड़ी गौरी के कानों के लव का रंग या जैसे एक झीनी सफेद साड़ी के नीचे झलकता नारंगी रंग का पेटीकोट। लाल नीला हरा सफेद काला जैसे मोटे रंगों के नाम खूब जानता हूँ। पीला आसमानी गुलाबी आदि फीके रंग भी पहचान लेता हूँ। आसमान का रंग गौरी की रंग छुटी नाइटी की तरह है। ले आउट डिजाइनर मोहाँती बताता है कि आजकल और भी कई आधुनिक और जटिल रंगों की उत्पत्ति हो गई है। पसीने का रंग कैसा होता है : पर्पल, पिच या टेरेकोटा शेड में?मसलन ओसारे की चौकी मेजेंटा धूप से रँगी है। पिछले दोल मेले में एक मरून शर्ट खरीदी। तालाब में गोता लगा कर आँखें खोलने का रंग स्यैन और हरे का मिला जुला रंग है। आदि। दोपहर का रंग आधुनिक नहीं है लेकिन उसका नाम नहीं जानता। दोपहर के सुनसान में भर पेट खा कर पत्नी के साथ लेटने का भी कोई रंग होता है क्या : मोहाँती से पूछूँगा।

गौरी को सोता देख कर यह धोखा हो जाता कि वह जाग रही है। सोते में कभी उसके मुँह से एक मरी हुई कुनमुनाहट निकलती : दो चार नुचे चिंथे शब्द, आपस में गुत्थमगुत्था और हतप्रभ : जैसे अक्षरों के बीच स्पेसिंग-लीडिंग कम कर दी गई हो।

उसकी पलकें फड़कतीं। भुला बिसरा दिये गए छोटे छोटे सपने। कायदे से वयस्क सपने भी नहीं, जैसे सपने का अदना सा बच्चा : सपनी!

मैं उठ कर खिड़की के पास चला आया। धीरे से खिड़की के पल्लों को खोला। चारों तरफ की चुप्पी और सुनसान के बरक्स मेरा इस तरह उठ कर खिड़की के पास आना हवा के फेफड़ों में दर्द के मारे बौखला गया। मैं चुप था। कहीं दूर से मेरा चुप होना उड़ता हुआ आता था। बाहर ओसारे में ओसारा भर दोपहर, सीढ़ी से उतर कर आँगन में आँगन भर। इधर उधर सूराखों से, ऊपर के खुले से दोपहर भभकी पड़ रही है। हैंडपंप के पास रखे कुकर, तसली,बटुली, चम्मच में कुकर, तसली, बटुली, चम्मच भर दोपहर। हैंडपंप से निकली मोरी से दोपहर छुल छुल बह रही है। अहाते पर से बाहर को दोपहर के कूदने की आवाज आती है : डुबुक ... टप्प! कमरे में गौरी की साँसों की कमसिन आवाजें हैं। जागे हुए के कारण मैं अपनी साँसें जान बूझ कर इधर उधर भटका कर छोड़ता हूँ ताकि आवाज न हो और गौरी की नींद न टूट जाए। कभी कभी गलती से मेरी साँस कमरे की किसी ठोस वस्तु से टकरा कर छन्न से बजती है। मैं अफसोस करता हूँ। कहीं दूर से मेरा अफसोस करना उड़ता हुआ आता है।

दरअसल गौरी को सोता देख कर मेरा मन उसके प्रति कृतज्ञता से भर उठा था। **(**बेबी पिंक कलर की कृतज्ञता**,** हे हे**!)** अचानक मुझे उसकी देखभाल की जिम्मेदारी बढ़ चढ़ कर महसूस होने लगी। यह इसलिए भी हो सकता है कि सोते हुए उसका चेहरा विकारहीन और अपेक्षाकृत ज्यादा वेध्य लग रहा था। मैं कोशिश कर रहा था कि किसी भी हाल में उसकी नींद पूरी होने से पेश्तर न टूटे। इसके लिए मैंने अपने आवश्यकता से अधिक हिलने डुलने पर रोक लगा दी थी। बहुत जरूरत पर ही मैं चलता, दबे पाँव। खिड़की के बाहर के दृश्य को दिलदारी से देखने की जगह फर्स्ट रीडिंग की तरह मैंने अपनी दृष्टि मोटी मोटी और पहली ही नजर में आ जाने वाली चीजों तक महदूद कर दी। मैं किसी भी बात पर सूक्ष्मतापूर्वक विचार करने से खुद को निर्ममता से एडिट करने लगा। ज्यादातर मैंने उन्हीं चीजों को अपनी सोच का विषय बनाया जो आकार में बड़ी और महत्वहीन हो जाने की हद तक जानी पहचानी हों, मसलन पेड़, फल, ऐन चौराहे पर आयुर्वेदिक औषधियों और जड़ी बूटियों की दुकान, मंसूर मियाँ की कानी घोड़ी, ग्वालों के हुड़दंगिये बच्चे आदि।

थोड़ी देर बाद मैंने महसूस किया कि मैं एक बेजोड़ मंथरता से भर गया हूँ। दोपहर की चुस्सड़ उमस में मेरी सारी तरलता जाती रही थी। मेरी हड्डियाँ तक अकड़ने लगीं। जम्हुआई रोकना भी भारी पड़ रहा था। गौरी नींद में गाफिल थी और मैं खिड़की पर खड़ा अपने आप से जूझ रहा था। भीतर कहीं दबे छुपे मैं असंतुष्ट था, उस दबाव से,जो

घर में रहते हुए चौबीसों घंटे मुझे बाँधे रखता है। मन के धूसर में बासी हवाएँ गूमड़ बनाती हैं। हर घड़ी हमें ख्याल रखना पड़ता है कि एक अदद गलत झोंका संबंधों की दरारों में घुस बैठी चिनगारी को हवा दे सकता है। दफ्तर में हमारी रुद्ध उत्तेजनाएँ गरगर बहने लगती हैं। किसी भोंडे मजाक पर, दकियानूसी छींटाकशी पर हम हो हो कर हँसते हैं। सहकर्मियों पर अश्लील फिकरे कसते, लतीफे बनाते। दफ्तर में काम करने वाली लड़कियाँ भी भरपूर साथ देतीं। बाल की खाल निकालतीं। जान बूझ कर गलतफहमी पैदा करतीं। द्विअर्थी संवादों में खूब मजा लेतीं। हम सब उनका दिल रखने के लिए एक दूसरे को अपना रकीब मानते। (सुभाष दा और करबी दी वाला मामला ऑफिसजाहिर था इसलिए वे दोनों इस खेल से बाहर।) लंच आवर में कट चाय पिला कर उनके घर उनके शंकालु पतियों की बात नहीं करते। इससे वे हमें पजेसिव मानतीं, खुश होतीं। सबका अपना घर बार। (करबी दी का भी।) चिंताएँ। ढाई तीन महीने की मेटरनिटी लीव में शॉर्ट टर्म माँ बन जातीं। इस तरह सिर्फ दो बार, यानी जिंदगी में कुल छह महीने दो बच्चों के लालन पालन के लिए। हम दो हमारे दो। बच्चे बड़े हो जाते। माँ को पहचान लेते ठीक ठीक। याद रखते।

'घड़ी ने दो बजाई' जैसे एक वाक्य की बनावट पर कंपोजीटर सुभाष दा खिसिया जाते। 'सोते हुए उसने एक भारी उसाँस भरी' जैसे एक पुरानी शैली के वाक्य पर उन्हें अफसोस होता। कहीं कोई गलती दिख जाती तो वे उसके लेखक को गरियाते जिसने बिना रिवाइज किए ही प्रेस कॉपी भेज दी थी। 'कमरे का तापमान' और 'देह की धूप' जैसे आलंकारिक पदबंधों पर उनकी हँसी रोके नहीं रुकती। हँसते हुए वे बीड़ी सुलगाते हैं। हँसते हुए वे खाँसने लग जाते हैं। एक अदद ऊटपटाँग वाक्य भी बर्दाश्त नहीं कर सकते। खाँसते खाँसते बेहाल हो जाते। (करबी दी, 'मर क्यों नहीं जाता मरदूद! छुट्टी मिले तुझे भी और मुझे भी।') जिंदगी प्रूफ कॉपी नहीं जिसमें गलतियाँ सुधारने की मोहलत हो।'अंत तक कुछ नहीं बदलता' जैसे एक फैसलाकुन वाक्य से सुभाष दा की आँखें धुआँ जातीं। फेफड़े जर्जर होते जाते हैं। चश्मे का पावर बढ़ता जाता है।

गौरी गौरी!

गौरी अभी भी नींद के कीचड़ में सनी हुई। धीरे धीरे दोपहर ढल रही है। धूप का अभिमान भाप बन कर उड़ता जा रहा है। घंटे डेढ़ घंटे में यह धूप किसी माँ मरी बच्ची की तरह हो जाएगी : उदास, शांत। कमरे की गाढ़ी हवा में बहुत सारे 'मन उदास है' इधर उधर उड़ रहे हैं। ये सारे शादी के बाद से आज तक के कभी मेरे कभी गौरी के कहे अनकहे 'मन उदास है' हैं। मैं बहुत करीब से गौरी के गाफिल चेहरे को देखता हूँ। खिड़की के खुले पल्ले से होकर एक 'भूल स्वप्न' आ कर गौरी के चेहरे पर बैठ जाता है।

मैं उड़ाता हूँ तो वह इधर उधर उड़ कर वापस वहीं बैठ जाता है। (जैसे टेलीफोन के संदर्भ में रॉंग नंबर, कंपोजिंग में राँग फोंट, वैसे ही सपने के संदर्भ में भूल स्वप्न। मैं बगैर एडिटिंग सेक्शन से कंसल्ट किए यह शब्द गढ़ता हूँ और उदास हो जाता हूँ।) अपनी देह में हर कहीं : गर्म गुदाज अंगों, रंध्रों, उँगलियों के जोड़ों, गोरे टखनों, गंभीर जाँघों : हर कहीं गौरी सो रही है। खून की तरह गाढ़ी दोपहरी नींद। उसे सोता देख मैं उदास हो जाता हूँ कि दुनिया में हर कहीं गौरी सो गई है और अब मैं भर दुनिया में निपट अकेला जगा हूँ।

गौरी गौरी, क्या तुम मुझे सुन रही हो? गौरी क्या तुम्हें याद है जब पहली बार...

हवा में उड़ता हुआ एक बूढ़ा नाटा 'मन उदास है' अचानक मेरे कानों में फुसफुसा जाता है : याद है बाबा याद है, गौरी को सब सच सच याद है। बस थोड़ा होल्ड करो, प्लीज स्टे ऑन द लाइन, गौरी अभी लौट आएगी थोड़ी देर में।

मैं कमरे से निकल कर बाहर आ जाता हूँ। मेरे पीछे कमरा छूट जाता है, नए पुराने तमाम 'मन उदास है'छूट जाते हैं। नींद के कीचड़ में लथपथ गौरी छूट जाती है। 'हर इतवार को गौरी को प्यार करता हूँ' पीछे छूट जाता है। 'हर इतवार को गौरी के बारे में सोचता हूँ कि बेचारी को हर दिन एक सा जुते रहना पड़ता है' पीछे छूट जाता है। 'थोड़ा पूरा पड़ोस घूम आता हूँ। सबसे हालचाल पूछ आता हूँ। किसी की गमी में शामिल होता हूँ। नरेन दा की बेटी की शादी के कार्ड का प्रूफ देख आता हूँ। नरेन दा चाय पी कर जाने को कहते हैं तो मैं कहता हूँ, अरे नहीं नहीं।' आदि सब भी पीछे छूट कर इतिहास बन जाते हैं। भूगोल में मैं आगे और आगे बढ़ता जाता हूँ। दफ्तर से लौटते हुए मधुकर दा मिल जाते हैं। मैं मधुकर दा को खबर देता हूँ कि आपकी बात सच निकली। मधुकर दा नवीन के बारे में बताते हैं कि अभी उसकी उमर ही क्या थी। अगले वैशाख में नवीन की शादी गोप बाबू की मँझली लड़की से होनी तय थी। नवीन के बारे में बात करते करते हम दोनों आगे बढ़ते हैं तो कहीं दूर संझापूजन का शंख बजता सुनाई पड़ता है। 'एक लड़की की माँ गुलाबी रिबन लगा कर उसकी चोटी गूँथती है' सुनाई पड़ता है। गोप बाबू घमौरियों से भरी अपनी पीठ पर नाइसिल पाउडर छोप कर बाजार जाते दिख पड़ते हैं। मधुकर दा पूछते हैं कि क्या मैंने गौरी को बता दिया। मैं कहता हूँ आज उसने अलस्सुबह ही मुझे झकझोर कर जगा दिया था। तभी।

गौरी गौरी।

कल्याणी फास्ट अपनी पटरी पर दौड़ती हुई बढ़ती है। आज खिड़की वाली सीट मिलने से इटैलिक बहुत खुश है। पास ही खड़े बुजुर्ग बार बार टो कर देख लेते हैं कि कहीं

उनकी जेबतराशी तो नहीं हो गई। प्यार किया तो डरना क्या आज अकेले लौट रहा है, उसकी गर्लफ्रेंड नहीं दिखती। और वो देखो फुटबोर्ड पर की इतनी धक्कामुक्की में भी एक कालेजिया लड़का कानों में ईयरफोन लगाए कैसे बिंदास खड़ा है! कल्याणी फास्ट में जितने भी लोग बैठे हैं,खड़े हैं, लटके हैं : वे दरअसल इतने सारे लोग नहीं, कुल मिला कर दिन भर के काम से थकाहारा और अब घर को लौटता एक ही आदमी है।

गौरी नींद में रास्ता देखती है।